Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-5(A)| May-2026

Original Article

मौर्यकालीन महिलाओं की सामाजिक स्थितिः एक अध्ययन

डॉ. कमलेश चौधरी

सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास), ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

Email: chaudharykamlesh272@gmail.com

Manuscript ID:
JRD -2026-180503
ISSN: 2230-9578
Volume 18
Issue 5(A)
Pp. 7-9
May- 2026
Submitted: 15 Apr. 2026
Revised: 25 Apr. 2026
Accepted: 10 May. 2026
Published: 31 May 2026

सारांश :

समाज शब्द एक जनसमूह, समुदाय अथवा सम्मेलन का परिचायक है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः वह स्वभावतः इस समाज समुदाय में ही सहयोग समदाय से अपनी जीवन यात्रा करता हुआ गन्तव्य स्थान तक पहँचने का प्रयत्न करता है। यह यात्रा गति ही सभ्यता है, जिसमें उसके व्यक्तित्व और समष्टि का निर्माण होता है। वस्तुतः समाज मानव जीवन का विस्तृत कार्य क्षेत्र और साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। समाज में संतुलन रखने के लिये मर्यादा और व्यवस्था स्थापित करनी पड़ती है। मनुष्य भी विश्वप्यापी समन्वय का एक अंग है। वह अपने को इस विश्वव्यापी समन्वय के अनुरूप बनाने के लिये वासनाओं, भावनाओं, विचारों, प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं का संतुलन करके अपने व्यवहार, व्यापार और सम्पक्र को ठीक कर समाज को संगठित करता है। यह समन्वय कुछ मान्यताओं पर आधातिर है। यदि ये मान्यताएँ बुद्धिसंगत और ज्ञान गर्भित न हों तो निश्चय ही अंधविश्वासों और कट्टर दुराग्रहों ने बदलकर समन्वय में बाधक हो जाति है। प्रत्येक काल में बुरी मान्यताएँ–जातिप्रथा, वर्णव्यवस्था, स्त्रियों पर अत्याचार इत्यादि समाज में सदैव में व्याप्त रहती है, किसी काल में ये अधिक हो जाती है। और किसी काल में कम।

मुख्य शब्द : *मौर्यकालीन सामाजिक, जीवन, समाज, व्यवस्था, महिलाओं, स्वतंत्रता, अधिकार, सीमा, धर्म, शिक्षा आदि*

भूमिका :– कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में वर्णो के जो स्वधर्म प्रतिपादित किये हैं वे भारत की प्राचीन परम्परा और सामाजिक मर्यादा के अनुसार हैं। कौटिल्य ने समाज को चार वर्णो में विभक्त किया है, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र।

ब्राह्मण के स्वधर्म– अध्ययन करना, यजन (यज्ञ करना) याजन (यज्ञ कराना) दान करना और प्रतिग्रह (दान ग्रहण करना) कहे गये हैं।

क्षत्रिय के स्वधर्म– अध्ययन, यजन, दान, शास्त्राजीव (शस्त्र द्वारा आजीविका प्राप्त करना या सैनिक सेवा) और भूतरक्षण (प्राणियों की रक्षा) हैं।

वैश्व के स्वधर्म– अध्ययन, यजन, दान, कृषि, पशुपालन और वाणिज्य (व्यापार) हैं।

शूद्र का स्वधर्म– द्विजातियों (ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करना) वार्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य) कारूकर्म (शिल्पी या कारीगर का कार्य) और कुशीलव कर्म (नट आदि के कार्य) हैं।

मौर्य काल में वर्ण व्यवस्था का स्वरूप ऐसा नहीं था कि विविध वर्णों के व्यक्ति केवल उन्ही कार्यों को सम्पादित करें जिनका विधान शास्त्रों द्वारा उनके लिये किया गया है। फिर भी कौटिल्य ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि सब वर्णो को अपने–2 स्वधर्म का पालन करना चाहिये और राज्यसंस्था का एक प्रमुख कार्य यही है कि वह सबको अपने–2 स्वधर्म में स्थिर रखे। कौटिल्य के अनुसार स्वधर्म का पालन स्वर्ग और मोक्ष के लिये होता है। यदि स्वधर्म पर अतिक्रमण किया जाए तो अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। हिन्दू समाज व्यवस्था में स्वधर्म से आशय वर्णाश्रम धर्म से है। स्मृतिकारों ने भी राजा को बारम्बार वर्णाश्रम–धर्म का प्रतिपालक बतलाया है। वर्ण धर्म या जाति प्रथा अन्याय के आधार पर अधिष्ठित है, जिसमें ब्राह्मण को तो भू–देव बनाकर अति महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है और शूद्र तथा चाण्डाल को नागरिकता के मौलिक अधिकारों से भी वंचित करके दासता की श्रंखला में जकड़ दिया गया है। शूद्रों को सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं था, एक ही अपराध के लिए ब्राह्मणों की अपेक्षा वे अधिक कठोर दण्ड के भागी होत थे। चांडाल कुत्तों से भी बदतर समझे जाते थे। अतः प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता कि वर्णाश्रेम व्यवस्था सामाजिक अन्याय पर आधारित थी। इस का आधार सामाजिक विषमता थी जो प्रचलित अन्याय भरी प्रथा का पर्याय बना गया था। यह सच है कि समाज में कुछ कुरीतियों के अस्तित्व का कारण प्रचलित वर्ण व्यवस्था थी किंतु अधीतकालीन समुदाय में व्याप्त सहकारिता की भावना ने इस प्रकार के सामाजिक विषमता एवं अन्याय का निराकरण कर दिया था। इस काल में अर्थशास्त्र के इस दावे को कभी स्वीकार नहीं किया गया कि ब्राह्मण कर–दण्ड एवं प्राणदण्ड से सर्वथा बरी किये जांय। वेद पढ़ने के कारण शूद्र या ब्राह्मण स्त्रियों को दण्ड मिलने की घटनाएं भी प्राचीन भारत में बहुत कम मिलेंगी। वेदाध्ययन के प्रतिबंध का समाज, जिसमें शूद्र भी शामिल थे, ईश्वरकृत समझता था और इसे तोड़ने में कोई आर्थिक लाभ भी न था। अतः इस प्राकर के प्रतिबंध का उल्लंघन करने की किसी को आवश्यकता भी न थी। आतः इस आधार पर अधीतकाल में किसी प्रकार के वर्ग–संघर्ष या वर्ग–शोषण की चर्चा ग्राम्य समुदाय में व्याप्त विरादरी एवं सहकारिता की भावना के सर्वथा विपरीत होगी। ग्राम समुदाय मुख्य रूप से कृषि कार्य पर आधारित होता है। कृषि कर्म आपसी सहयोग पर निर्भर होता है। अतः अर्थशास्त्र में ग्राम के लोगों के मध्य कृषि एवं अन्य सार्वजनिक कार्यो में सहयोग के अनेक प्रावधान मिलते हैं। वास्तव में उसने यूनानी समाज को ध्यान में रखकर वर्णो, कुछ व्यवसायों और सरकारी वर्गो को एक में मिला दिया था। शूद्रों के प्रति कौटिल्य का व्यवहार नम्र था।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
डॉ. कमलेश चौधरी, सामाजिक विज्ञान संकाय (इतिहास), ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

How to cite this article:
चौधरी, कमलेश. (2026). मौर्यकालीन महिलाओं की सामाजिक स्थितिः एक अध्ययन. Journal of research & development, 18(5(A)), 7–9. https://doi.org/10.5281/zenodo.20841256

Quick Response Code:

Website: https://jrdrvb.org/

DOI: 10.5281/zenodo.20841256

OPEN ACCESS

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-5(A)| May-2026

इसीलिये कौटिल्य ने लिखा है कि यदि किसी पुरोहित को इस कार्य के लिये आदेश दिया जाए कि वह अजाज्य (अर्थात शूद्र आदि ऐसे व्यक्ति जिन्हें यज्ञ का अधिकार ने हो) को यज्ञ कराए, उसे पढ़ाए और यदि इस आदेश का पालन नहीं होता है तो उस ब्राह्मण को पद्च्युत कर दिया जाय।

विवाह तथा स्त्रियों की दशा

इस काल में विवाह संस्था शास्त्रीय नियमों और प्रथाओ से मर्यादित थी यद्यपि इनके अपवाद में भी कुछ विवाह होते थे। इस युग में आठ प्रकार के विवाह प्रचलित थे–

1. **ब्राह्म–** कन्या को अलंकृत और सुसज्जित कर वर को पिता द्वारा सौपना।
2. **प्राजापत्य–** सन्तान के लिये विवाह जिसके अनुसार धर्म, अर्थ और काम में कन्या और वर का अधिकार समान होता था।
3. **आर्श–** इसमे वर पक्ष से गौओ का एक जोड़ा लेकर कन्या का पिता दान में पुनः वर को देता था।
4. **दैव–** दैवकार्य में लगे योग्य और सुशील ऋत्विज् को कन्या देना।
5. **आसुर–** द्रव्य लेकर लड़की को ब्याहना।
6. **गान्धर्व–** कामवश बिना माता पिता की आज्ञा से वर और कन्या का संयुक्त होना।
7. **राक्षस–** कन्या को उसके परिवार वालों से बलात् छीन ले जाना।
8. **पैशाच–** छल अथवा बल से सोई या मादक वस्तु से मत्त कन्या का उपभोग करना।

इनमे से पहले चार प्रकार के विवाह प्रशस्त तथा पिछले चार अप्रशस्त माने जाते थे। विवाह प्रायः अपने वर्ग व जाति में होते थे किन्तु असवर्ण और अन्तर्जातीय विवाह भी सम्भव थे। दहेज प्रथा भी प्रचलित थी।

मौर्य युग में बहुविवाह की प्रथा विद्यमान थी। मैगस्थनीय के अनुसार भारतीय लोग बहुत सी स्त्रियों से विवाह करते थे। कुछ को वे दत्तचित्त सहधर्मिणी बनाने के लिये विवाह के लिये विवाह करके लाते थे, कुछ लोग केवल आनन्द के प्रयोजन से और घर को सतांन से भर देने हेतु। कौटिल्य अर्थशास्त्र से भी मैगस्थनीज के इस कथन की पुष्टि होती थी। वहाँ लिखा है कि समुचित वृत्ति प्रदान करके पुरूष बहुत सी स्त्रियों से भी विवाह कर सकता है। स्त्रियाँ पुत्रों के लिये होती है। पुनर्विवाह की प्रथा भी मौर्य काल में विद्यमान थी। पुरूष व स्त्री दोनों को पुनर्विवाह के नियम प्रतिपादित थे– यदि स्त्री को आठ वर्ष तक कोई सन्तान न हो या जिससे केवल पुत्रियों का ही जन्म हो या जो वन्ध्या हो, तो उस पुरूष को आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। पुरूषों के सामान स्त्रियाँ भी पुनर्विवाह कर सकती थी पर उन्हें भी कुछ नियमों का पालन करना पड़ता था। पति के निधन पर वह अपने इस अधिकार का प्रयोग कर सकती थी किन्तु उसे अपने श्वसुर व प्रति सम्बंधियों से प्राप्त धन वापस करना पड़ता था, पर श्वसुर या सम्बंधियों की सहमति पर वह धन रख सकती थी। विदेश गये पति की किसी भी स्त्री से कोई संतान ने हो तो स्त्री को 2 वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। यदि संतान हो तो अधिक वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। यदि पति विदेश गया हो और पत्नी के भरण पोषण की व्यवस्था कर गया हो तो अवधि के दुगुने वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। मौर्यकालीन समाज में नियोग की प्रथा प्रचलित थी। यदि कोई राजपुरूष यात्रा पर गया हुआ है या वह नपुंसक है तो वह सवर्ण अपने पति का से सन्तान उत्पन्न कर सकती थी। समाज में सम्बन्ध विच्छेद तलाक तथा प्रचलित थी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में संबन्ध विच्छेक के लिए मोक्ष शब्द का प्रयोग किया है।

चार आश्रम

मानव समाज को चार वर्गो में कौटिल्य अर्थशास्त्र ने विभक्त किया है। ये आश्रम निम्न हैं–

1. **ब्रह्मचर्य–** ब्रह्मचारी के स्वधर्म–स्वाध्याय, अग्निकार्य यज्ञ अभिषेक, भैक्षव्रत भिक्षा द्वारा निर्वाह, आचार्य गुरू के प्रति प्राणन्ति की वृत्ति सेवा या भक्ति।
2. **गृहस्थ–** गृहस्थ के स्वधर्म–अपने कर्म द्वारा आजीविका कमाना, तुल्य स्थिति के ऐसे परिवार में विवाह करना जिसका ऋषि गोत्र अपने परिवार के ऋषि से भिन्न हो, ऋतुगामित्व और देवता, पितर, अतिथि तथा मृत्यों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करके आमदनी का व्यय करन और उसके पश्चात् जो शेष बचे उससे निर्वाह करना।
3. **वानप्रस्थ–** ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना, भूमि पर शयन करना, जटा धारण करना, मृगचर्म ओढ़ना, अग्निहोत्र तथा अभिषेक करना, देवता, पितर, अतिथियों की सेवा करना।
4. **परिव्राजक–** सन्यासी का स्वधर्म–इन्द्रियों पर पूर्ण संयम रखना, अनारम्भ कोई पेशा या धंधा न करना निकिन्चनत्व कोई सम्पत्ति न रखना, संगत्याग किसी की भी संगति न करना भिक्षा माँग कर निर्वाह करना, जंगल में निवास करना।

गणिकाएँ और रूपाजीवाएँ

मौर्य युग में बहुत सी महिलाएं ऐसी भी होती थी जो विवाह द्वारा पारिवारिक जीवन न बिताकर गणिका, वेश्या या रूपजीवा के रूप में स्वतंत्र रूप से जीवन यापन किया करती थी।

इन स्त्रियों को मुख्यतया तीन वर्गो में विभक्त किया जा सकता है–

1. राजकीय सेवा में कोई करने वाली महिलाएं जो गणिका कहलाती थीं।
2. रूपजीवाएँ जो स्वतंत्र रूप से पेशा करती थीं।
3. ऐसी महिलाएँ जो गुप्तचर का कार्य करती थीं।

मौर्य कालीन गणिकायें जो राज्य की सेवा करती थी गणिकाएँ होती थी। उनकी स्थिति प्रायः दासियों के सदृश हुआ करती थी। उन्हें जीवनपर्यनत राज्य सेवा में रहना पड़ता था पर धन देकर उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त कर सकना भी सम्भव था। गणिका चौबीस हजार पण देकर अपनी स्वतंत्रता खरीद सकती थी। मौर्य युग में एक ऐसा वर्ग भी था जिसे मदिरा के व्यापारी अपने पानागारों में आगन्तुको की सेवा के लिये रखे थे। कौटिल्य ने इन्हें पेशलरूपा दासी की संज्ञा दी हैं। ये वास्तव में रूपाजीवाएँ होती थी जो पुरूषों को मद्यपान कराने के लिये होती थीं तथा गुप्तचर का कार्य भी करती थीं। मौर्य शासनकाल में गुप्तचरों का बड़ा महत्व था। बहुत सी स्त्रियाँ परिव्राजिका, दासी भिक्षुणी, नर्तकी आदि के वेश बनाकर गुप्तचर विभाग में कार्य करती थी।

तमाशे तथा अमोद–प्रमोद

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि बहुत से ऐसे लोग थे जिनका कार्य जनता का मनोरंजन करना तथा तमाशे दिखाना था।

इनके निम्न लिखित वर्ग थे–

1. नट – नाटक करने वाले
2. नर्तक – नाचने वाले
3. गायक – गाने वाले
4. वादक – बाजा बजाने वाले
5. वाग्जीवक – विविध प्रकार की बोलियाँ बोलकर लागों का मनोरंजन करने वाले
6. कुशीलव – तमाशे दिखाने वाले
7. प्लवक – रस्से पर नरचने वाले
8. सौमिक – मदारी
9. चारण

कौटिल्य की सम्मति में ये नट, नर्तक, वादक आदि जनता के कार्य में विध्न डालने वाले होते हैं। अतः ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि ये कर्म में विघ्न न कर सकें। क्योकि ग्राम प्रायः निराश्रय होते है और उनके निवासी प्रायः खेती पर ही आश्रित होते हैं अतः नट या नर्तकों को ग्रामों में जाकर कार्यो में विध्न नहीं डालना चाहिये। यद्यपि कौटिल्य अमोद प्रमोद के लिये निर्मित शालाओं और जनपदों में नट, नर्तक आदि द्वारा प्रेक्षाओं को अच्छी दृष्टि

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-5(A)| May-2026

से नहीं देखते थे, पर इसमें संदेह नहीं कि मौर्य काल में जनता के मनोरंजन के लिये अनेकविध साधन विद्यमान थे। उस युग में बहुत सी प्रक्षाएं लोकप्रिय थीं। पुरूषों से सम्बधित प्रक्षाएं 'पुरूष प्रेक्षाएं' एवं स्त्रियों सं संबधित प्रेक्षाएं 'स्त्री प्रेक्षाएं' कहलाती थी। कौटिल्य के विधानानुसार यदि पुरूष प्रेक्षा में स्त्रियाँ जाये या स्त्री प्रक्षा में पुरूष जाये तो दंड देना पड़ता था। रात्रि में इन प्रेक्षाओं में जाने पर दुगुना दंड होता था। जनता के सामूहिक मनोरंजन और अमोद प्रमोद के लिये जहाँ नट, नर्तक, कुशीलव आदि प्रेक्षाएं किया करते थे, वहाँ कतिपय अन्य भी ऐसे साधन थे जिनसे जनता सामूहिक रूप से अपना मनोरंजन कर सकती थी। ये साधन विवाह, समाज और और प्रहवण के रूप में थे। कौटिल्य ने विवाह शालाओं का उल्लेख किया है जिसकी सत्ता उनको पसंद न थी। समाज ऐसे समारोहों को कहा जाता था जिसमें लोग सुरापान किया करते थे साथ ही अनेक प्रकार के अमोद प्रमोद। राजा और अन्य सम्पन्न लोगों के अमोद प्रमोद का एक साधन शिकार भी था। जिसका मैगस्थनीज द्वारा लिखित विवरण में विस्तृत उल्लेख है। सर्वधारण जनता के मनोरंजन के लिये मौर्य युग में चिड़ियाघरों, मृगवनों और सर्पघरों की भी सत्ता थी।

सुरा, पानग्रह और द्यूत शालाएँ

मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारतीय यज्ञों के अतिरिक्त और कभी मदिरा नहीं पीते। पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुशीलन से ज्ञात होता है मौर्य युग में सुरापान का पर्याप्त प्रचार था। इस काल में अनेक प्रकार की सुरायें बनाई जाती थीं। इनके निर्माण तथा क्रय विक्रय पर राज्य की व्यवस्था थी। कौटिल्य सुरापान की हानियों से परिचित थे उनकी सम्मति में सुरापान से यह आशंका बनी रहती है कि कार्य में लगे हुए लोग प्रमाद न करने लगें, आर्यो की मर्यादा न भंग हो जाए। अतः सुरापान पर नियत्रंण था। लोगों के चरित्र व शुचिता को दृष्टि में रखकर उन्हें आधा कुडुम्ब, चौथई कुडुम्ब, एक कुडुम्ब, आधा प्रस्थ या एक प्रस्थ सुरा प्रदान की जाए। सुरापान पर नियत्रंण तो था पर उत्सव, समाज, यात्रा, प्रहवण आदि के अवसरों पर सब कोई यथेष्ट सुरापान कर सकते थे। मौर्य युग में द्यूत (जुआ) क्रड़ा भी बहुत लोकप्रिय थी। द्यूत के ऊपर राज्य का नियंत्रण था, इसके लिये अमात्य की नियुक्ति की जाती थी जिसे 'द्यूताध्यक्ष' कहते थे। द्यूत राज्य की आमदानी का एक महत्वपूर्ण साधन था।

निष्कर्ष:

सारांश में यह कहा जा सकता है कि शुंगकाल में आश्रम व्यवस्था को वैदिक मान्यता के अनुसार परिवर्तित कर उसके नियमों को अत्यन्त कठोर कर दिया गया था। शुंगकाल में सामाजिक परिवर्तन का एक मुख्य कारण वर्णभेद था। समाज निश्चित रूप से चार वर्णो में विभत हो चुका था, किंतु यह विभाजन मूलतः सुविधा के लिए किया गया था। यह एक प्रकार का श्रम विभाजन था। बाद के युग की कट्टरता का समावेश इसमें नहीं हो पाया था। इसे मानव प्रगति में बाधक नहीं समझा जा सकता, किंतु पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा शुंगकाल में वर्ण व्यवस्था अधिक कठोर थी। जहाँ पूर्ववर्ती युगों में वर्णो का स्वरूप कुछ घुला मिला था, वहीं शुंगकाल में वर्णो के बीच एक पार्थक्य किया गया। उनके कर्तव्य एवं अधिकारों का बँटवारा हुआ। मनु इस काल के चारों वर्णो में प्रथम तीन को द्विजाति तथा चौथे को शूद्र जाति की संज्ञा देते हैं। पतंजलि ने वर्णो में ब्राह्मण, क्षत्रिय, विट और शूद्र का उल्लेख किया है। विवाह आदि सामाजिक संस्थाओं के बंधन भी कस दिये गये थे, यद्यपि अंतर्जातीय विवाह, भोज आदि की स्वतंत्रता आंशिक रूप से अभी थी। वैवाहिक संबंधों के विच्छेद की प्रथा मौर्य कालीन समाज में प्रचलित थी और कौटिल्य ने तलाक को अपने अर्थशास्त्र में 'मोक्ष' शब्द के रूप से बताया है। स्त्री पुरूष दोनों को किन्हीं विशेष परिस्थितियों में एक दूसरे को त्याग करने का अधिकार था किंतु इस युग तक आते–2 यह प्रथा काफी अंशों में कमजोर पड़ गई थी। मनु के अनुसार विवाह आजीवन मरणान्त चलने वाली संस्था थी। पति पत्नी का परस्पर त्याग नहीं हो सकता। पति किन्हीं विशेष परिस्थितियों–बंधात्व, रूग्णता आदि में पत्नी के रहते दूसरी स्त्री से विवाह कर सकता था, परन्तु यह अधिकार पत्नी को नहीं प्राप्त था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, सुरजीत मानः भारत का ऐतिहासिक शब्द कोष, पृ० 67
2. जैन. डॉ. हुकमचन्दः भारत का इतिहास, अजमेर बुक कम्पनी, जयपुर, पृ० 2010
3. त्रिपाठी, रमाशंकरः प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1998 पृ० 174
4. पाण्डेय, राजबलीः प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशय, वाराणसी, 1994, पृ० 57
5. सिंह, डॉ. शरदः प्राचीन भारत में महिलाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण, दिल्ली, 1987
6. श्रीवास्तव डॉ. ए. एल. : भारतीय कला–प्रतीक, इलाहाबाद, 1997 : भारतीय कला सम्पदा, उमेश प्रकाशन इलाहाबाद, 2001
7. गुप्त परमेश्वरी लाल : भारतीय वास्तुकला, वाराणसी, वि. 2003 : गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 1970
8. गुप्ता बी. एल. : मध्यकालीन भारत, जयपुर पब्लिशिंग हाऊस, बीकानेर, ईस्वी 1971
9. शोध पत्र, पत्रिकायें पृथ्वी कुमार अग्रवाल : मौर्यकाल, राजबली पाण्डेय स्मृति ग्रन्थ, कला निधि प्रकाशन, देव रिया, 1976
10. शास्त्री के. ए. नीलकण्ड : नन्द–मौर्य–युगीन भारत, दिल्ली, 1987 : द हिस्टी ऑफ साउथ इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1976